International Journal of Applied Research 2015; 1(10): 404-406

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(10): 404-406
www.allresearchjournal.com
Received: 18-07-2015
Accepted: 20-08-2015

प्रदीप कुमार
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
गुरु घासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
बिलासपुर, (छत्तीसगढ़)

रमेश कुमार गोहे
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
गुरु घासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
बिलासपुर,(छत्तीसगढ़)

Correspondence
प्रदीप कुमार
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
गुरु घासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
बिलासपुर, (छत्तीसगढ़)

उपन्यास तपर्ण में ग्रामीण दलित अस्मिता और संघर्ष (दलित साहित्य के आइने से)

प्रदीप कुमार, रमेश कुमार गोहे

आधुनिकता के प्रकाश में न केवल मनुष्य में चेतना का संचार किया है, बल्कि उसने अस्मिता बोध और संघर्ष को भी जगाया है। इसी जागृति के फलस्वरुप दलित अस्मिता और संघर्ष ने हिन्दी साहित्य में अपनी एक अहम जगह बनाई है, जो सदियों से प्रताड़ित, अपमानित और पशुवत जीवन जी रहे लोगों में मुक्ति की मानसिकता को कलम के जरिये जन–जन तक पहुँचाने का काम किया है। "दलित साहित्य ने सामाजिक समानता और राजनीतिक भागीदारी को भी साहित्य का विषय बनाकर उनकी आर्थिक समानता की अधूरी मुहिम को पूर्णता दी।[1]

आज का दलित साहित्य ऐसी घटनाओं का जो सवर्णों द्वारा दलित उत्पीड़न की हो को एक नये सिरे से लिखना प्रारम्भ कर दिया है उसका आक्रोश, संघर्ष खून और हिंसा का नहीं है, जैसा कि बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा "कि धर्म पर आधारित हिन्दुओं की अस्पृश्यता और जाति वाली समाज व्यवस्था जो अब तक इतने घातक आक्रमण सह चुकी है, कभी ढह जाएगी।[2] दलित साहित्य के आक्रोश और विद्रोह ही उसकी शक्ति है। दलित साहित्य अपनी मानवीय अस्मिता को बखूबी उजागर कर रहा है। जिसकी हर विधा चाहे वह कहानी हो या कविता, आत्मकथा, उपन्यास या नाटक सभी मानवीय गुणों की अच्छाइयों को लेकर चल रही है। दलित साहित्य सच्चाइयों, विसंगतियों, विषमताओं व विद्रूपताओं की सहज एवं प्रभावी अभिव्यक्ति का साहित्य है, यह मानवीय संवेदना के आख्यान है इसलिए यह आज के समय का सबसे अच्छा साहित्य कहा जा सकता है, जिसमें मुसीबत–संकट एवं संघर्ष के समय में सामाजिक न्याय एवं समानता के लिए सतत् जागरुकता तथा संचेतना की हिमायती आम आदमी के साथ खड़ा होना का भरोसा दिलाने वाला साहित्य है। जिसमें मानवीयता को समाज, संस्कृति और साहित्य का आधार माना गया है। जिसमें इन्सानियत की संस्कृति के पुष्प उगाने की पहल की है और यही दलित साहित्य का एक बहुत बड़ा गुण भी हैं।

दलित साहित्य के मुक्ति, संघर्ष और अस्मिता के प्रश्न को शिवमूर्ति के उपन्यास 'तर्पण' में देखा जा सकता है। जो सन् 2004 में लिखा गया था। जिसमें शिवमूर्ति जी कहते हैं कि "वह वर्ग संघर्ष था। रोटी के लिए। यह वर्ण संघर्ष है। इज्जत के लिए। इज्जत की लड़ाई रोटी की लड़ाई से ज्यादा जरुरी है।[3]

शिवमूर्ति ग्रामीण जीवन के कथाकार हैं और भारतीय ग्रामीण शैली के सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक जीवन का चित्रण बखूबी इस उपन्यास के जरिये उन्होंने उठाया है। जो सदियों से चली आ रही जातिगत, शोषण, परम्पराओं, रुढ़ियों, धार्मिक आण्डम्बरों का खुलासा करता है। ये उपन्यास जो अपने आत्मसम्मान,अधिकार,और समस्याओं का हल प्राप्त करने के साथ अन्याय से न्याय की लड़ाई का प्रतीक है, का इस उपन्यास में वर्णन किया गया। जो प्रताड़ना सवर्ण सदियों से करते आये हैं, उसी रुप को दलितों ने अपनाकर समाज में एक नई करवट का संकेत किया है। आज अम्बेडकरवादी दर्शन को लेकर चलने वाला यह साहित्य दलितों की रक्षा के साथ उनकी अस्मिता और संघर्ष को भी उजागार करने में मदद्गार साबित हुआ है। "किसी भी आंदोलन व साहित्य का मूल्यांकन जब ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में होता है तब उसका क्रांतिकारित्व या प्रतिक्रांतिकारित्व सिद्ध होता है।[4]

शिवमूर्ति उत्तरप्रदेश के जिला सुल्तानपुर के मूलतः (जो अवध प्रान्त में आता है) हैं, और वे इस उपन्यास में अवध प्रान्त के क्षेत्र को अपनी कथा की पृष्ठभूमि के तौर पर शामिल करते हैं,जो उनकी जन्मभूमि व कर्मभूमि भी रही है। बदलते समय के परिवेश को ध्यान में रखकर लिखा गया, ये उपन्यास दलित साहित्य के पथ पर एक नई दृष्टि को लेकर उभरता है। जो समाज व्यवस्था की आड़ में सवर्णों की पोल खोलने का काम करता है और पियारे दलित तेवर में कहता है,कि "किसी गुमान में मत भूलिए पंडिताइन। अब हम ऊ चमार नहीं हैं कि कान पूँछ दबाकर सब कुछ सह,सुन लेंगे। चिउँटे को गुड़ का मजा लेना महँगा कर देंगे।[5]

यह कथा लम्बी कहानी और उपन्यास के विवाद में काफी समय तक उलझी रही। लेकिन विवाद विफल रहा क्योंकि यह उपन्यास वर्ष 2004 तक के वर्तमान जीवन के यथार्थ को उकेरता हुए भविष्य का भी प्रतिनिधित्व करता है। यह जब लिखा जाता है तब तक उत्तर प्रदेश में एक दलित महिला तीन बार मुख्यमंत्री रह चुकी होती हैं इस परिवेश को ध्यान में रखते हुए, शिवमूर्ति ने ग्रामीण जीवन के निचले स्तर की राजनीति और सामाजिक जीवन को साहित्य में शामिल करते हुए दलित संघर्ष को उजागार करने की भरसक कोशिश की है। जिसमें दलित महिला के तेवर को इस प्रकार प्रकट करते हैं। "इहै मेहरंडा धरमुआ कै पुतवा। कैलसिया (चन्दर की बहन) कै भतरा। अन्नासै मारै लाग।[6]

यह तेवर बदले हुए समय का है, जो निड़रता का प्रतीक था, पुरानी प्रथा को तोड़ते हुऐ नये परिवेश के परिप्रेक्ष्य में शिवमूर्ति अपने इस उपन्यास में समावेशित करते हैं। और दलित महिला मुख्यमंत्री होने से समाज में धीरे–धीरे परिवर्तन की बयार जो बहती है उससे सवर्णों में भी दलित संगठन का पता चलता है मिस्त्री बहू ललकारते हुऐ कहती है "पकड़ पकड़। भागने न पावै। पोतवा पकड़ि के ऐंठ दे। हमेशा–हमेशा का गरह कर जाय।[7]

आजादी के पूर्व भारतीय दलितों ने सपना देखा था कि उन्हें भी आजादी मिलेगी। वे लोग भी दासता की जंजीरों से छुटकारा पा जाएंगे। किन्तु आजादी के बाद भी भारत के ऐतिहासिक पृष्ठों को पलट कर देखने पर यही मिलता है, कि दलित के साथ किए गये वायदे केवल उन्हें भुलावे में ही रखने के लिए थे। उनकी अस्मिता के साथ खिलवाड होता रहा। सवर्णों, शोषको द्वारा उनके संवैधानिक अधिकारों के साथ बलात्कार होता रहा है। 'तर्पण' में भी जब धरमू पण्डित थाने जाकर खिदमत करता है और भाई जी अपने साथ पियारे हरिजन को लेकर रिपोर्ट लिखने जाते है तो देखते है, कि किस प्रकार उन्हे डराने की कोशिश की जाती है और एक व्यक्ति को प्रताड़ित होते देखकर उन्हें सारे संवैधानिक अधिकार धरे के धरे रह जाते हैं। भारत (विशेषकर उत्तर भारत) के थानों की आज भी यही स्थिति बनी है। "धत साला माद .....मुंशी चिल्लाता है, हग दिया साले धोती में ? हगने से छुट्टी मिलेगी? खड़े रहो साले उसी तरह सवेरे तक।[8] गाँवों, शहरों, यत्र–तत्र सभी जगह दलितों की इतनी दयनीय स्थिति है जो सोच के बाहर है। कोई बाहरी व्यक्ति सोच भी नहीं सकता कि इसने निचले स्तर के जीवन यापन करने का कानून तथा सामाजिक कानून अपने ही धर्मावलम्बी भाइयों के साथ बरता जाने की शास्त्रीय मान्यता है। इनकी दशा आज भी गुलामी से बदतर है, पशुओं से बदतर जीवन इन दलितों का है। जो 'तर्पण' में देखने को मिलता है।

अभी तक बहुत कम पुरुष कथाकार है, जो दलित महिला को तेवर के साथ अपने कथा में शामिल किये हैं। शिवमूर्ति एक ऐसे कथाकार हैं, जो दलित महिला चेतना को भी अपने कथा में बखूबी अंकित करना नहीं भूले हैं। वर्तमान ग्रामीण अंचल की वास्तविकता को प्रकट करने वाले साहित्यकारों में इनका एक अलग स्थान है। ग्रामीण जीवन शैली में आज भी ये यथार्थवाद की ओर संकेत करते हैं। जौ तर्पण में कलमबद्ध करके साहित्य में उबारा गया है। उपन्यास प्रारम्भ से ही सामाजिक परिवर्तन की बहुआयामी एवं आदिम तलहटी को एक साथ संस्पर्श करता है। मजदूरों व दलितों के दिन बदले हैं उनकी चेतना को लाठी के बल पर सुलाया नहीं जा सकता हाँ बहलाने–फुसलाने की बात और है। "पीठ दिखाना अच्छी बात नहीं। रिपोर्ट लिखाना होगा। संघर्ष करना होगा फिर कुछ रुककर कहते हैं, और सिर्फ संघर्ष ही काफी नहीं जीत भी पक्की होनी चाहिए।[9]

सांमतवादी लोगों के केन्द्र में दलित सदैव पशुवत जीवन जीता रहा है, इसी सामंती सोच को बदलने के लिए तर्पण की कथा लेकर शिवमूर्ति आते हैं। जो मनगढ़त है पर वर्तमान यथार्थ से परिपूर्ण है। जिसमें दलित लड़की रजपतिया का अपमान और दुर्व्यवहार तो चन्दर करता पर बलात्कार नहीं फिर भी मुकद्मा बलात्कार का होता है, बलात्कार के प्रयास का भी नहीं पुलिस धरमू पण्डित के लड़के चन्दर को पकड़ ले जाती है। क्योंकि पूरी कोशिश बलात्कार की थी, जो वह सोचकर बैठा होता है, और जो सदियों से दबंगई के बल पर होती आ रही है।

न्यायालय में दांव–पे–दांव चलाये जाते हैं झूठ, छल, कपट और हर संभव कोशिश की जाती है। उपन्यास में पक्ष –विपक्ष, झूठ–सच की लडाई नहीं बल्कि दलित द्वारा अपने अस्मिता और अधिकार की लड़ाई लड़ी जाती है। बहुजन पार्टी के नेता भाई जी जब गाँव वालों के इस केस में इन्वाल्व होते है, तो सम्पूर्ण परिदृश्य बदलने लगता है। अर्धसत्य को पूरी शिद्दत से सत्य बनाने की स्ट्रटजी अपनानी होती है कम्प्लेन घटना दर्ज के लिए करने के लिए नहीं, बल्कि जीत के लिखनी होगी दोनों ओर से हर संभव साधन अपनाए जाते हैं। "इस गाँव के चमार बड़े सरकस हैं। जब बाभनों के खिलाफ मोर्चा खोल दिए तो उसकी क्या औकात।[10] इस चक्कर में दो बार चन्दर जेल जाता है।

ठाकुर–बाभन में भले ही सदियों से द्वेष–बैर रहा हो, पर जब दलितों का प्रश्न आता है, तो वो एक हो जाते हैं। और जेल से लौटने के बाद चन्दर की दबंगाई और बढ़ जाती है। चन्दर खुलेआम कहता है कि "मुन्नवा का खैर हाथ–पैर तोड़कर ही संतोख कर लूगा पर यह भाई साला दिख गया गाँव में, तो सीने पर ही गोली दागूँगा। लात की मार भूल गया साला।[11] और इस अपमान में चन्दर की माँ चन्दर कि जेल से वापस आने पर कहती है कि "घोर कलजुग तप रहा है। शूद्र चमार का दिमाग सातवें आसमान पर है तो आसमान से चिर्री नहीं गिर रहा है यही क्या कम है।[12] जिसका उत्तर दलित महिला तेवर के साथ रजपतिया की माई देती है "नीच होगी तुम। तुम्हारे पूत–भतार। जो गली–गली कूकुर जैसे पूँछ हिलाते सूँघते घूमते हैं।[13]

शिवमूर्ति के उपन्यास में ग्रामीण जीवन जिस सहजता के साथ दिखाई देता है, ठीक वैसे ही उनके स्वभाव में भी देखा जा सकता है। जो भीतर से ज्वालामुखी और बाहर से शान्त है। घटना का क्रम इस तरह नियोजित किया गया कि हर दृश्य समय की वाणी हो गया। चन्दर बन्दूक लेकर भाई जी को दौड़ा लेता है, भाई जी पेड़ पर चढ़ जाते हैं बकाइन की पत्तियाँ लेकर वापस लौटते समय मुन्ना भी चन्दर की आवाज सुनकर एक पेड़ की ओट में छुप जाता है। और फिर पीछे से एक डंडे से चन्दर की सिर पर जोर से वार करता है। चन्दर वही मूर्च्छित होकर लुढक जाता है। फिर भाई जी चाकू मुन्ना को पकड़ाते हुऐ उसकी नाक काटने को कहते हैं, मुन्ना पहले माना करता है पर भाई जी के जबदस्ती करने पर वह चन्दर की नाक काट देता है। और कहता है कि "बाप रे। इतना चीमर होता है नाक का माँस? कि यह ही मुर्दार है।[14] नाक कटने से चन्दर ही नहीं पूरे ब्राह्मण समाज अपनी बदनामी मानता है और चन्दर की माँ अपने पति से कहती है कि "मेरे बेटे को नकटा करने वाले का मूंड़ चाहिए। उठाइए बन्दूक और उतार दीजिए पच्चीस गोलियाँ उस हरामजादे की छाती में जिसने यह काम किया है।[15] यहाँ पर शिवमूर्ति स्त्री रुप के मातृत्व पक्ष पर जोर देते है, और धरमू अपनी पत्नी से यही प्रश्न पूछता, कि "जब तेरे बेटे ने मेरी नाक कटवाई तब तो नहीं उठा इतना दर्द।[16]

सदियों से भुक्तभोगी रहा दलित समाज को शिवमूर्ति ने एक नये परिवेश में दिखाये जाने का प्रयास किया है, और अन्त में मुन्ना का गुनाह पियारे अपने सर ले लेता है, पियारे का बेटा और वकील बहुत समझते हैं पर पियारे वकील से कहता है कि "नहीं वकील साहब। मुझे जेल जाना है। जेल की रोटी खाकर पराशिचत करना है। इस पाप का पराश्चित कि कान–पूँछ दबाकर इतने दिनों तक उन लोगों पर जोर जुल्म सहता रह गया।[17] शिवमूर्ति ने इस उपन्यास में अवधी बोली का प्रयोग खूब बढ़–चढ़कर किया है। जैसे "आप की बुद्धिया एक दम्मै भरिष्ठ हो गई है क्या बप्पा काहे को जुर्म का इकबाल करने के लिए फाट पड़े?[18]

दूसरी जगह एक महिला से अवधी बोली को इस तरह कहलवाते है – "नहीं छोडना तो जेहल भेजो। ई का कि कुकुर–बिलार की नाई बन्द करके कोंच रहे हो। भगवानौ इनहीं लोगन की तरह आन्हर–बाहिर होइ गए हैं।[19]

इस प्रकार शिवमूर्ति ने इस उपन्यास में सामाजिक और राजनैतिक बदलाव के साथ वर्तमान समय में दलितों में हो रहे संघर्ष, अस्मिता बोध और नई बदलती हुई करवट जो दलित चेतना को मजबूती प्रदान करती है, और सांमतवादी सोच को सिरे से नकारती है, को दिखाने का प्रयास किया है । कि आजादी दलितों को कागज पर मिली है, हकीकत तो कुछ और बयाँ करता है। आज के नवउदारवादी जीवन में दलित चेतना का धीरे–धीरे जागरण हुआ है, पर ग्रामीण अंचल आज भी दूर तलक इस जागरण से अनजान है। और परम्परावादी जीवन जीता आ रहा है, शिवमूर्ति ग्रामीण चेतना के साथ दलितों की चेतना को उठाने की पूरी कोशिश इस उपन्यास में करते हैं। अवध प्रान्त की बोली होने के कारण कुछ शब्दों के अर्थ को समझने में परेशानी होती है, लेकिन यही देशी बोली इस उपन्यास में जान डाल देती है। जो यथार्थ बोध की ओर भी संकेत कराने में हमारी मद्दगार साबित होती है।

संदर्भ सूची

1. वाल्मीकि ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण– 2011 पृ.सं.–25
2. कर्दम जयप्रकाश, दलित साहित्य विशेषांक 2004, पृ.सं.–110
3. शिवमूर्ति, तर्पण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2010 पृ.सं.–26
4. कर्दम जयप्रकाश, दलित साहित्य विशेषांक 2004, पृ.सं.–52
5. शिवमूर्ति, तर्पण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2010 पृ.सं.–26
6. वही पृ.सं.–10
7. वही पृ.सं.–11
8. वही पृ.सं.–34
9. वही पृ.सं.–24
10. वही पृ.सं.–58
11. वही पृ.सं.–96
12. वही पृ.सं.–99
13. वही पृ.सं.–99
14. वही पृ.सं.–107
15. वही पृ.सं.–108
16. वही पृ.सं.–108
17. वही पृ.सं.–116
18. वही पृ.सं.–115
19. वही पृ.सं.–35